International Journal of Information Movement *Vol. 8 Issue VIII* *(December, 2023)*
Website: www.ijim.in *ISSN: 2456-0553 (online)* **Pages** **11-17**

समकालीन कविता : बदलते जीवन – मूल्य

डॉ॰ सुमन
सहायक प्रोफेसर
हिंदी विभाग, हंसराज महाविद्यालय , दिल्ली विश्वविद्यालय
Email-id: drsumangond@gmail.com

सार: साहित्य एक समाज की सामाजिक संपत्ति का महत्वपूर्ण हिस्सा है जो समाज के साथ गहरे रूप से जुड़ा होता है। इसमें समाज को प्रभावित करने की शक्ति होती है और मानव मूल्यों को साहित्यिक मूल्यों के साथ जोड़ता है। परिवार को एक संबंधपूर्ण और समर्पित सामाजिक परिवेश में स्थापित करने का महत्वपूर्ण रूप से बताया गया है। कविता में विभिन्न चरित्र, स्थितियाँ, और समस्याएं हैं, जो समकालीन समाज की चुनौतियों का पत्र चित्रित करती हैं और मानवीय रिश्तों के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालती है। साहित्य का यह महत्वपूर्ण रूप से सामाजिक और मानवीय महत्व है, जो समृद्धि, समरसता, और सद्गुण समाज की दिशा में मार्गदर्शन करता है।

मुख्य शब्द: परिवार, संबंधों, घर-परिवार, भ्रष्टाचार और मूल्यहीनता

1.0 भूमिका:

साहित्य वैयक्तिक नहीं, सामाजिक संपत्ति है | इसका समाज के साथ अविछिन्न संबंध है | यदि समाज नहीं होता तो साहित्य भी नहीं होता, यदि साहित्य होगा तो समाज भी होगा | एक के बिना दूसरा अधूरा है | साहित्य वह सशक्त माध्यम है, जो समाज को व्यापक रूप से प्रभावित करता है | मानव, साहित्य और समाज के बाहर जी नहीं सकता | साहित्य जिन मानव मूल्यों को ग्रहण करके उनके स्वरूप को अभिव्यक्ति प्रदान करता है, वे साहित्यिक मूल्य कहलाते हैं | अतः मानव मूल्य और साहित्यिक मूल्य एक ही कहे जा सकते हैं |

समकालीन कविता अपने समाज के प्रति प्रतिबद्ध है | समकालीन कविता ने न केवल जीवन के विविध पहलुओं को उभारा है, बल्कि समाज में बढ़ती आशंकाओं, विडम्बनाओं को गहरे परिवर्तन बोध से जोड़कर देखा है | समकालीन समय में लिखी जाने के कारण कोई भी कविता समकालीन कविता नहीं होती क्योंकि समसामयिक होना समकालीन होना नहीं है | तात्कालिकता को तोड़ना समकालीनता का अनिवार्य शर्त है | जो नया है या जो कुछ लिख जा रहा है वह सब समकालीन नहीं है, बल्कि जो सार्थक है वह समकालीन है अर्थात समय के साथ सार्थक सरोकार समकालीन कविता की अनिवार्य शर्त है | विश्वंभरनाथ उपाध्याय समकालीन कविता को परिभाषित करते हुए कहते हैं– "समकालीन कविता अपने समय के मुख्य अंतर्विरोधों और द्वंद्वों की कविता है | समकालीन कविता में जो हो रहा है उसका सीधा खुलासा है, क्योंकि उसमें

जीवन जीते, संघर्ष करते, लड़ते, बौखलाते, तड़पते, गरजते तथा ठोकरे खाकर सोचते वास्तविक आदमी का चेहरा है| यह काल विशेष या काल क्षण की कविता नहीं काल प्रवाह की कविता है|"[1] समकालीन कविता मूलतः सामाजिक संवेदना की कविता है | सामाजिक जीवन में व्याप्त मूलभूत आवश्यकताओं के आभाव, गरीबी, बेकारी, मंहगाई, अन्याय, अत्याचार, शोषण और भ्रष्टाचार ने समकालीन कवियों को उद्वेलित किया है | फलतः उनकी लेखनी ने वर्तमान सामाजिक आचार-विचार, अवस्था-व्यवस्था, गति-परिवर्तन और नीति-मूल्य आदि को नि:संकोच होकर उकेरा है | आज आजादी के पचहत्तर वर्षों के बाद भी मूलभूत आवश्यकताओं का भयानक अभाव अत्यधिक शोचनीय विषय है | आत्म-निर्भरता के बड़े-बड़े दावों के बावजूद, आज भी हमारे देश में अधिकांश लोग भूखे हैं | इस कड़वे सत्य को कवि धूमिल लिखते हैं –

"बच्चे भूखे हैं
माँ के चेहरे पर पत्थर
पिता जैसे काठ
अपनी ही आग में
जल रहा है ज्यों सारा घर |"[2]

परिवार हमारे सामाजिक जीवन का मूल आधार है | परिवार में व्यक्ति के व्यक्तिव तथा समस्त सामाजिक संबंधों का विकास होता है | पहले परिवार के स्वरूप में जो अन्तरंग संबंध हुआ करता था समय के साथ वह लगातार बदलता चला गया | परिवार के लिए व्यक्ति के मन में एक कोमल जगह होती थी; किन्तु वैज्ञानिक उन्नति, औद्योगिक प्रगति और प्रतिस्पर्धा की भावना से धीरे-धीरे व्यक्ति घर-परिवार से दूर होने लगा | संयुक्त परिवार का विघटन और एकल परिवार का आविर्भाव होने लगा | संबंधों के बीच अमानवीयता तथा खून के रिश्ते के साथ फायदा घुसने लगा | इस बदलते परिवार के स्वरूप को समकालीन कवियों ने अत्यंत गंभीर संवेदनात्मक भूमि पर उतारा है| राजेश जोशी की कविता 'संयुक्त परिवार' इसका एक अच्छा उदहारण है जिसमें वे इस त्रासद स्थिति को बताते हैं कि किस तरह संयुक्त परिवार अब एकल परिवार में बदलता जा रहा है-

"यह छोटा सा एकल परिवार
कोई एक बाहर चला जाए तो दूसरों को
काटने को दौड़ता है घर |"[3]

पहले यह बदलाव बहुत धीरे-धीरे था मगर आज ये सब तकनीकी युग में बहुत तेजी से हो रहा है | स्थिति ऐसी हो गयी है कि यह सब हमारी आँखों के सामने होता है और हम इसे पहचान भी नहीं पाते कि कुछ बदला है या नहीं |

आज के सामाजिक परिवेश में घर की समस्या भी कोई कम विकराल नहीं है | अपना एक छोटा सा घर बनाने के लिए आम आदमी के पास न रूपया है, न जमीन | केवल ईंट, दरवाजे, खिड़कियाँ, परदे, फर्नीचर और अन्य घरेलू सामान एक जगह इकट्ठा कर देना ही घर नहीं है | वस्तुतः घर को जो चीज घर बनाती है, वह है मानवीय संबंध | मानवीय संबंधों के अभाव में यह सभी साजो सामान मकान तो बन सकता है, मगर घर नहीं | कवि लीलाधर जगूड़ी की ये पंक्तियाँ संभवतः इसी विडम्बना की ओर संकेत करती है-

"आखिर कहाँ है घर?
आखिर कहाँ है घर?
यह तो केवल मकान ही है |"[4]

समकालीन कविता घर-परिवार की यथार्थ स्थितियों का उद्घाटन करके केवल हताशा, निराशा और संबंध शून्यता को प्रदर्शित नहीं करना चाहती, अपितु वह उस शून्यता को भरने के लिए प्रेरित करती है, जिसके अभाव में घर-परिवार का मोह समाप्त होता जा रहा है | यथा –

"हंसी की एक झालर
टंगी हुई तारों पर
हवा के धक्के से
जिधर झुक जाती है | उधर
मेरा घर है|
छोटा सा घर
और छोटे से घर में
असंख्य दिशाएं हैं |"[5]

ये असंख्य दिशाएं जीवन की संभावनाओं का प्रतीक है | परिवार सामाजिक जीवन का मेरुदंड है | वास्तव में परिवार हमें भविष्य के प्रति आस्थावान बनाता है | वह हमारे सपनों और आदर्शों को विश्राम स्थल है |

सामाजिक जीवन में आये बदलाव के साथ धीरे-धीरे जीवन के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव आ रहा है | परिणाम स्वरूप जीवन के प्रतिमान सामाजिक संबंधों और पारिवारिक रिश्तों में तनाव और विद्रोह उभर आया है | आर्थिक संकट ने संबंधों और रिश्तों की मधुरिमा को समाप्त ही कर दिया है | इस संदर्भ में कवि अजित कुमार लिखते हैं –

"लाओ ! लाओ ! पैसा ! कहाँ है पैसा
लाओ ! केवल संबंध ! व्यापार के संबंध
न तो घृणा, न प्यार ! न दोस्ती, न बैर |"[6]

प्रेम, सौहार्द्र और सहानुभूति जैसी भावनाएं जीवन को अर्थवान बनाने में सहायक होती हैं, मगर आज ये सब अर्थहीन हो चुकी हैं | मानव चरित्र में इस हद तक परिवर्तन आये हैं कि अब सहयोग और सहानुभूति जैसे मूल्यवान तत्व भी जड़ हो गए हैं, जबकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है | वह समाज में रहकर एक-दूसरे के सहयोग से बड़े से बड़ा काम कर लेते थे, जन्म का उत्सव हो या विवाह का, मृत्यु का हो या घरेलू कामकाज सारे सुख दुःख आपस में मिल बाँटकर कर लेते थे | आज समाज में संबंधहीनता की स्थिति उत्पन्न हो गई है, क्योंकि कोई भी एकत्व भावनाओं को पुष्ट करने वाली स्थितियों की ओर सचेष्ट नहीं है | सतही दुर्भावनाओं का शिकार आज हर आदमी अलगाव की पीड़ा को झेल रहा है | जब पारिवारिक रिश्ते ही तनावग्रस्त हों तो आस-पड़ोस से संबंध मधुर कैसे रह सकते हैं-

"अर्रा कर गिरती हैं पड़ोस की दीवारें और मित्रताएं
टूटते दरवाजे और बूढ़े सक्रिय लोग
पड़ोस एक सड़ांध देता धुआं है |"[7]

अब पड़ोसियों के प्रति व्यक्ति के मन में प्रतिस्पर्धा का भाव भर चुका है और धीरे-धीरे यह प्रतिस्पर्धा ईर्ष्या भावना से ग्रसित होने लगी है | अब व्यक्ति पड़ोसी की शुभमंगल की कामना की जगह यह सोचता है कि उसका कब बुरा होगा, उसके घर में सुख-शांति, समृद्धि, विकास रूक जाए उसके अशुभ की ढेरों कल्पनाएँ मन में करने लगता है | समाज का अस्तित्व मानव और मानवता से है | आज के दौर में मानवतावादी मूल्य समाज से लगभग गायब होते जा रहे हैं, मनुष्य आत्मकेंद्रित होते जा रहा है | अपने सामाजिक संबंध को आज मनुष्य जैसे भूल बैठा है |

समकालीन समय में जहाँ हम चारों तरफ से अमानवीयता के घेरे में हैं वहां कविता मानवीयता को बचाये रखने के जतन में हमेशा माँ की गोदी में शरण लेना चाहती है | समकालीन कविता में माँ का चित्रण श्रद्धा भाव से भरा हुआ है –

"माँ
तुम्हारे सजल आँचल ने
धूप से हमको बचाया है
चांदनी का घर बनाया है
तुम्हारे तरल दृगजल ने
तीर्थ-जल का मान पाया है
सो गए मन को जगाया है |"[8]

आधुनिक समाज में माता-पिता के प्रति संबंधों में जो पवित्रता थी, वह धीर-धीरे स्खलित होती जा रही है | सामाजिक सरोकार का ताना बाना इस कदर उलझ गया है कि आपसी रिश्ते भी

स्वार्थ केन्द्रित प्रतीत हो रहे हैं | माता – पिता के असहायपन का चित्रण करते हुए राजेश जैन 'राही' कहते हैं –

"लाठी जिसको जग कहे, पुत्र कहाँ वो हाय |
वृद्ध हुए माँ बाप तो, बेटा लट्ठ बजाय ||
बिखरे-बिखरे से सपने, बिखरी सी हर बात |
बेटा कुछ सुनता नहीं, कह कर हारे तात ||"[9]

भारतीय समाज में नारी को प्राचीन काल से ही महत्त्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी माना जाता रहा है | उसे पुरुष की अर्धांगिनी कहकर सम्मानित भी किया जाता है | परन्तु धीरे-धीरे इस मानसिकता में बदलाव आया है | सिद्धांतों और आदर्शों को बलि चढ़ाकर सुख सुविधाओं और उच्च जीवन जीने की लालसा ने व्यक्ति को चारित्रिक पतन की ओर धकेल दिया है | समाज में बढ़ती भोगवादिता का कारण केवल पुरुष ही नहीं बल्कि स्वयं नारी भी है, वह भी आधुनिकता की दौड़ में अंधी बनकर न सिर्फ दौड़ती जा रही है बल्कि अपनी अस्मिता तक को दाव पर लगाने में नहीं हिचकती वह स्वेच्छा से संबंध बनाने के साथ ही अपने शरीर का प्रयोग विज्ञापन के रूप में बीड़ी के बण्डल पर भी करवाने में नहीं सकुचाती | धूमिल लिखते हैं –

"मुझे पता है
स्त्री –
देह के अंधेरे में
बिस्तर की अराजकता है
स्त्री पूंजी है
बीड़ी से लेकर
बिस्तर तक
विज्ञापन में फैली हुई |"[10]

समकालीन कवि नारी की स्थिति से प्रसन्न नहीं है इसलिए वे चाहते हैं कि नारी स्वयं अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करे तथा विरोधी तत्वों को आगे बढ़ने से रोके |

भ्रष्टाचार और मूल्यहीनता वर्तमान समाज के नासूर हैं | आज की व्यापारी सभ्यता इंसान को निगलती जा रही है | आदमी-आदमी को बेच रहा है | मंहगाई बढ़ रही है, जिंदगी नरक बन रही है | मानव मूल्य नष्ट हो रहे हैं | ढोंग, पाखंड, स्वार्थ, लालच से आदमी ग्रस्त है | आज पैसा ही जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य बना हुआ है | इसे हासिल करने के लिए व्यक्ति किसी भी हद तक जा सकता है तथा कोई भी समझौता कर सकता है |

समकालीन कविता समाज की उस स्थिति को भी दर्शाती है जिसमें व्यक्ति मानवीयता जैसे मूल्य से भी घबराने लगा है, क्योंकि इंसानियत के नाम पर उसे इतनी बार छला गया है कि अब उसे

किसी पर विश्वास ही नहीं रहा | सामाजिक विषमताओं ने उसके दृष्टिकोण को इतना बदल दिया है कि अगर कोई मानवीयता दिखाकर उसका भला करना चाहता है तो वह उसे भी शक की दृष्टि से देखता है | अरुण कमल इसी परिस्थिति का उल्लेख अपनी रचना में करते हैं –

"ऐसा जमाना आ गया है उल्टा
कि कोई तुम्हें रास्ता बतावे तो
शक करो
वह तुम्हें लूट सकता है सुनसान पाकर
कोई तुम्हें रात में सोने की जगह दे तो सोचो
तुम्हारा खून कर सकता है चुपचाप
और लाश आँगन में गाड़ देगा |"[11]

वास्तविकता यह है कि दिखावटी सभ्यता, भयानक मूल्यहीनता और व्यापक भ्रष्टाचार ने समकालीन कवियों को बहुत अधिक आहत किया है, परिणामत: उनकी रचनाओं में इन सभी के प्रति तीखे आक्रोश की अभिव्यक्ति हुई है | वर्तमान जीवन में जटिलतायें हैं, यातनायें हैं, असुरक्षा है, अजनबीपन है, परायापन है, व्याकुलता है, तनाव है, कुंठा है, उद्वेग है | स्पष्ट है सुलगती, दहकती जिंदगी, टूटते चटखते संबंध, खोखले दोगले अनुबंध परम्परागत जीवन-मूल्यों को अधिक दिन तक नहीं ढो सकते | उनमें बदलाव आना स्वाभाविक है | वैसे भी परिवर्तन सृष्टि का शाश्वत नियम है | जो कल था, वह आज नहीं है और जो आज है वह कल नहीं रहेगा | बदलाव के इस शाश्वत क्रम में जीवन के मूल्य भी नये रूप में, नये ढंग में परिवर्तित होते रहते हैं | साहित्य भी कोई जड़ वस्तु नहीं, जीवन और जगत के साथ वह भी अपने मिजाज को बदलता जाता है, तभी तो वह समाज का दर्पण कहलाता है | इसी धरातल पर बदलते हुए जीवन-मूल्यों के संदर्भ में समकालीन कविता सार्थक प्रतीत होती है |

2.0 निष्कर्षत: कहना अनुचित न होगा कि समकालीन कवि आज मानवीय संवेदना के पतन और जीवन की सहज गतिमानता को भीतर से सोख लेने वाला हरेक दुष्चक्र पहचान रहा है | उसे अब प्रेम की, प्रकृति की, परिवार की, घर की, बच्चे की, स्त्री की और पूंजीवादी समाज व्यवस्था से बेदखल किये गए मनुष्य की चिंता ही नहीं है, बल्कि वह नये सिरे से इन्हें जीवित रखने वाली शक्ति स्रोतों की तलाश कर रहा है | उन परम्पराओं, स्मृतियों को जीना चाहता है, वह उस मिट्टी की चिंता करता है जिसे महानगरीय संस्कृति ने छीन लिया है |

3.0 संदर्भ :

1. डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय – समकालीन कविता की भूमिका, मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया 1976, पृ. 03.

2. धूमिल – कल सुनना मुझे, युगबोध प्रकाशन, वाराणसी 1977, पृ. 68.
3. राजेश जोशी – दो पंक्तियों के बीच, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2000, पृ. 54.
4. लीलाधर जगूड़ी – रात अब भी मौजूद है, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1976, पृ. 89.
5. केदारनाथ सिंह – अभी बिल्कुल अभी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 1998, पृ. 18.
6. अजित कुमार – ये फूल नहीं, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, 1900, पृ. 76.
7. अशोक वाजपेयी – शहर अब भी संभावना है, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 1966, पृ. 63.
8. डॉ. कुंवर बेचैन – माँ, वंदेमातरम् (शुभम् स्मारिका), पृ. 30.
9. राजेश जैन 'राही' – पिता छाँव वटवृक्ष की, दोहा-संग्रह, प्रकाशक नवरंग काव्य मंच, पृ. 25.
10. धूमिल – सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1984, पृ. 91.
11. अरुण कमल – सबूत, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1999. पृ. 67.